सबद
पीयर-रिव्यूड त्रैमासिक शोध पत्रिका
वर्ष- 1, अंक- 3 (जुलाई–सितंबर 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

प्रेमचंद-पूर्व उपन्यासों में स्त्री-जीवन और सामाजिक यथार्थ

कु. आकांक्षा बाजपेई
शोधार्थी, डॉ. बी. आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश

हिंदी के आरंभिक उपन्यासों में स्त्री का चित्रण तत्कालीन सामाजिक, पारिवारिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से गहरे रूप में जुड़ा हुआ दिखाई देता है। आरंभिक दौर में स्त्री-शिक्षा उपन्यासकारों के प्रमुख सरोकारों में रही, किंतु धीरे-धीरे स्त्री-पात्रों के चित्रण का क्षेत्र विस्तृत हुआ। स्त्री केवल शिक्षा प्राप्त करने वाली या आदर्श गृहिणी के रूप में ही नहीं, बल्कि पत्नी, प्रेमिका तथा सामाजिक रूढ़ियों से प्रभावित और उनसे जूझती हुई स्त्री के रूप में भी उपन्यासों में उपस्थित हुई। गृह-शिक्षा, परिवार, पति-पत्नी संबंध, प्रेम, विवाह तथा बाल-विवाह, दहेज, अनमेल विवाह, जातिगत भेदभाव, विधवा जीवन, देवदासी प्रथा और वेश्यावृत्ति जैसी सामाजिक समस्याओं के माध्यम से उसके जीवन की अनेक स्थितियाँ सामने आती हैं। 'घराऊ घटना', 'बलवंत भूमिहार', 'श्यामा स्वप्न', 'स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी', 'स्वतंत्र रमा वा परतंत्र लक्ष्मी', 'ठेठ हिन्दी का ठाट' तथा 'सुंदर सरोजनी' आदि उपन्यासों में स्त्री-जीवन के विविध रूप दिखाई देते हैं। इन रचनाओं में एक ओर पारंपरिक भारतीय स्त्री के आदर्श को स्थापित करने का प्रयास है, तो दूसरी ओर स्त्री की वास्तविक परिस्थितियों, उसकी इच्छाओं, प्रेम और सामाजिक पीड़ा को अभिव्यक्ति भी मिली है। इस दृष्टि से हिंदी के आरंभिक उपन्यासों में स्त्री-चित्रण परंपरा और परिवर्तन के बीच स्थित दिखाई देता है।

बीज-शब्द: हिंदी उपन्यास, स्त्री-जीवन, स्त्री-शिक्षा, परिवार, प्रेम, विवाह, सामाजिक यथार्थ, स्त्री-चेतना।

प्रस्तावना

हिंदी उपन्यास के आरंभिक विकास-क्रम को देखने पर स्पष्ट होता है कि इस विधा का संबंध तत्कालीन सामाजिक जीवन से गहरे रूप में जुड़ा हुआ था। आरंभिक उपन्यासों में भाषा और शिल्प भले ही पूरी तरह परिपक्व नहीं थे, लेकिन कथ्य के स्तर पर नए प्रयोग दिखाई देने लगे थे। आरंभिक उपन्यासकारों के सामने सामाजिक सुधार का उद्देश्य प्रमुख था और स्त्री-शिक्षा इस उद्देश्य का महत्त्वपूर्ण आधार बनी। 'देवरानी-जेठानी की कहानी', 'भाग्यवती' और 'वामा शिक्षक' जैसे उपन्यासों में स्त्री को केंद्र में रखकर शिक्षा और संस्कार का प्रश्न उठाया गया। किंतु इन रचनाओं में स्त्री का व्यक्तित्व प्रायः पुरुष द्वारा निर्धारित आदर्शों के भीतर ही विकसित होता है। धीरे-धीरे हिंदी उपन्यास का कथ्य विस्तृत होने लगा। सामाजिक जीवन के साथ प्रेम, विवाह, पारिवारिक संबंध, जाति, धार्मिक संस्कार, अंधविश्वास तथा स्त्री की वास्तविक परिस्थितियाँ भी कथा का हिस्सा बनने लगीं। 'घराऊ घटना' में मध्यवर्गीय परिवारों के रीति-रिवाज, संस्कार, दाम्पत्य जीवन, धार्मिक संस्कार और अंधविश्वासों का चित्रण है। गोपाल राय ने इसे तत्कालीन समाज के रीति-रिवाजों और विचारों-मान्यताओं का विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत करने वाला उपन्यास माना है।[1] इसी प्रकार 'बलवंत भूमिहार' में पारिवारिक और सामाजिक जीवन के साथ प्रेम को भी वास्तविक धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। 'श्यामा स्वप्न' में प्रेम और जातिगत बंधनों का संबंध दिखाई देता है। 'स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी' में देवदासी प्रथा और वेश्यावृत्ति को स्त्री-जीवन की गंभीर समस्या के रूप में उठाया गया है। 'स्वतंत्र रमा वा परतंत्र लक्ष्मी' में दो विपरीत स्त्री-छवियों के माध्यम से भारतीय और पाश्चात्य जीवन-मूल्यों की तुलना की गई है। 'ठेठ हिन्दी का ठाट' में प्रेम और विवाह के बीच जातिगत तथा पारिवारिक अवरोधों को सामने रखा गया है। इस प्रकार इन उपन्यासों में स्त्री का संसार एक ही आदर्श के भीतर सीमित न रहकर विविध सामाजिक परिस्थितियों से जुड़ता जाता है।

वर्ष- 1, अंक- 3 (जुलाई–सितंबर 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

आरंभिक हिंदी उपन्यासों में स्त्री-शिक्षा का प्रश्न अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। शिक्षा को स्त्री के विकास के लिए आवश्यक तो माना गया, किंतु उसकी सीमा प्रायः घरेलू जीवन तक ही निर्धारित की गई। उस समय की सामाजिक संरचना में पुरुष की जिम्मेदारी घर से बाहर और स्त्री की जिम्मेदारी घर के भीतर मानी जाती थी। इसलिए स्त्री को दी जाने वाली शिक्षा भी मुख्यतः ऐसी थी जिससे वह परिवार को सुचारु रूप से चला सके। इस दृष्टि से शिक्षा स्त्री को स्वतंत्र बनाने के बजाय उसे बेहतर गृहिणी बनाने का माध्यम अधिक दिखाई देती है। 'घराऊ घटना' की चमेली इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। वह पढ़ी-लिखी, चतुर और अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने वाली स्त्री है। वह पति के सामने अपनी बात रखने में संकोच नहीं करती। उपन्यास में उसके पति की दृष्टि से कहा गया है कि पढ़ने-लिखने के कारण उसकी बुद्धि परिष्कृत हो गई है और वह अनेक बातों में अपनी पक्की राय रखती है। इस प्रकार चमेली के माध्यम से शिक्षा और विचार-अभिव्यक्ति के बीच संबंध स्थापित होता है। 'घराऊ घटना' में दाम्पत्य जीवन को भी सामान्य घरेलू परिस्थितियों के भीतर प्रस्तुत किया गया है। विवाह के समय पति-पत्नी एक-दूसरे से परिचित नहीं थे। गौने की पहली रात के प्रसंग में तत्कालीन विवाह व्यवस्था का चित्रण अत्यंत सहज भाषा में हुआ है: "बातचीत कहाँ से हो, देखा-देखी भी न हुई थी। मैं यह भी न जानता था कि वह गोरी है कि काली, नाटी कि लंबी। ब्याह के समय और गौने में वह मेरे सामने तो आई थी कई बार, पर सिर झुकाए, घूँघट गिराए और बदन सिकुड़ाये रहने के कारण मैं उसे देख न सका था और देखता ही कैसे? देखने का मजाल था?"[2]

यह उद्धरण केवल विवाह की औपचारिकता को नहीं, बल्कि उस व्यवस्था को सामने लाता है जिसमें पति-पत्नी के बीच परिचय और संवाद की संभावना विवाह के बाद भी सीमित थी। स्त्री का घूँघट, संकोच और पुरुष से दूरी तत्कालीन सामाजिक संरचना के महत्त्वपूर्ण संकेत हैं। विवाह के बाद की पहली बरसाइत, नैहर यात्रा, सखियों के साथ बातचीत, बच्चे के जन्म के अवसर पर होने वाले जादू-टोने और पति-पत्नी की नोक-झोंक जैसे प्रसंगों के माध्यम से स्त्री का घरेलू संसार अधिक सहज रूप में सामने आता है। इस उपन्यास का महत्त्व इस बात में भी है कि यहाँ स्त्री-जीवन को केवल आदर्शों के माध्यम से नहीं देखा गया है। स्त्रियों के सामान्य व्यवहार, पारिवारिक संबंध और उनकी दैनिक गतिविधियाँ कथा का स्वाभाविक हिस्सा हैं। इस कारण स्त्री पात्र किसी अमूर्त आदर्श का प्रतिनिधित्व करने के बजाय अपने समय के घरेलू परिवेश में साँस लेती हुई दिखाई देती है। यही प्रवृत्ति आरंभिक उपन्यासों में स्त्री-चित्रण को धीरे-धीरे अधिक यथार्थपरक बनाती है।

'स्वतंत्र रमा वा परतंत्र लक्ष्मी' में स्त्री-शिक्षा और परिवार को लेकर अलग प्रकार की दृष्टि मिलती है। रमा और लक्ष्मी दो विपरीत स्त्री-छवियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। रमा अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य जीवन-पद्धति से प्रभावित है, जबकि लक्ष्मी भारतीय संस्कारों, धार्मिक मूल्यों और घरेलू जीवन को स्वीकार करती है। लेखक दोनों के जीवन की तुलना करके भारतीय आदर्श स्त्री की छवि स्थापित करने का प्रयास करता है। लक्ष्मी गृह-कार्यों में दक्ष है, बड़ों का सम्मान करती है और पति की सेवा को अपना कर्तव्य मानती है। दूसरी ओर रमा को स्वतंत्रता के नाम पर पारंपरिक मर्यादाओं से दूर जाते हुए दिखाया गया है। उपन्यास के अंत में लेखक स्पष्ट करता है: "दोनों नायिकाओं के चरित्र दोनों ओर की पराकाष्ठा है। अच्छे और बुरेपन का संबंध किसी समाज से नहीं है। सुख और दुख दिखलाने के लिए गुणावगुण की अवधि का चित्र खींचा गया है।"[3] इस कथन से स्पष्ट है कि उपन्यासकार स्त्री के जीवन को भारतीय और पाश्चात्य जीवन-मूल्यों की तुलना के माध्यम से समझाने का प्रयास करता है। आधुनिक दृष्टि से यह स्त्री-स्वतंत्रता को सीमित रूप में देखता है, किंतु अपने समय में स्त्री-शिक्षा, संस्कार और पारिवारिक जीवन को लेकर चल रही बहस का प्रतिनिधित्व अवश्य करता है। इस उपन्यास की लक्ष्मी उस आदर्श का प्रतीक है जिसमें स्त्री की शिक्षा, गृह-कौशल, सेवा और त्याग को एक-दूसरे से अलग नहीं माना गया है। इसके विपरीत रमा की स्वतंत्रता को लेखक सामाजिक

वर्ष- 1, अंक- 3 (जुलाई–सितंबर 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

मर्यादा से विचलन के रूप में प्रस्तुत करता है। इस प्रकार यहाँ स्त्री-शिक्षा का प्रश्न स्त्री की स्वतंत्रता के प्रश्न से जुड़ता तो है, लेकिन लेखक उसका समाधान परंपरागत आदर्शों के भीतर खोजता है।

आरंभिक हिंदी उपन्यासों में प्रेम-संबंधों के चित्रण से स्त्री-पात्रों के व्यक्तित्व का एक नया पक्ष सामने आता है। 'बलवंत भूमिहार' में बलवंत और यमुना का प्रेम आकस्मिक रूप से आरंभ होता है। दोनों पहली मुलाकात में एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं, लेकिन प्रेम के कारण अपने पारिवारिक जीवन से पलायन नहीं करते। वे अपनी सामाजिक मर्यादाओं और पारिवारिक दायित्वों को महत्त्व देते हुए प्रेम को निभाने का प्रयास करते हैं। गोपाल राय के अनुसार, इस उपन्यास में प्रेम के भावनात्मक पक्ष का अपेक्षाकृत वास्तविक चित्रण मिलता है।[4] यमुना का चरित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह प्रेम करती है, लेकिन सामाजिक प्रतिष्ठा और पारिवारिक मर्यादा के प्रति भी सजग है। उसके लिए प्रेम और सामाजिक जीवन अलग-अलग नहीं हैं। यही कारण है कि उसका प्रेम केवल भावुकता पर आधारित नहीं है, बल्कि उसमें संयम और धैर्य दिखाई देता है। 'बलवंत भूमिहार' की प्रेमकथा की विशेषता यह भी है कि प्रेमी-प्रेमिका प्रेम के बावजूद अपने वास्तविक जीवन और पारिवारिक जिम्मेदारियों से अलग नहीं होते। इस प्रकार प्रेम को पलायन के बजाय सामाजिक जीवन के भीतर अनुभव की जाने वाली भावना के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'श्यामा स्वप्न' में प्रेम का स्वरूप इससे अलग है। श्यामा और श्यामसुंदर की प्रेमकथा स्वप्न के धरातल पर निर्मित है और रीतिकालीन प्रेम-परंपरा का प्रभाव उस पर स्पष्ट है। श्यामा अपने प्रेम को अपनी सखी से छिपाती नहीं है। वह अपने मन की बात व्यक्त करती है और प्रेमी के प्रति अपनी अनुरक्ति को स्वीकार करती है। श्यामा का यह रूप स्त्री के भावनात्मक संसार को अभिव्यक्ति देता है। किंतु प्रेम के सामने जाति और सामाजिक मर्यादा की दीवार खड़ी हो जाती है। दोनों प्रेम करते हुए भी विवाह नहीं कर पाते। इस प्रकार प्रेम यहाँ व्यक्ति की इच्छा और सामाजिक व्यवस्था के बीच संघर्ष का रूप ले लेता है।

उपन्यास की रचना-प्रक्रिया भी उसके प्रेम-कथात्मक स्वरूप को पुष्ट करती है। रात्रि के चार प्रहरों को चार अध्यायों में विभाजित करते हुए लेखक स्वयं कहता है: "रात्रि के चार प्रहर होते हैं। इस स्वप्न में भी चार प्रहर है, जगत स्वप्नवत् है, तो यह भी स्वप्न ही है..."[5] इस स्वप्नात्मक संरचना में श्यामा का चरित्र रीतिकालीन नायिका की विशेषताओं से निर्मित हुआ है। वह प्रेम को अनुभव करने और उसे व्यक्त करने वाली स्त्री है, किंतु उसके प्रेम का अंतिम निर्णय सामाजिक व्यवस्था करती है। इस विरोधाभास से पता चलता है कि आरंभिक उपन्यासों में स्त्री की भावनात्मक स्वतंत्रता और सामाजिक स्वतंत्रता एक-दूसरे के समान नहीं थीं। 'ठेठ हिन्दी का ठाट' में देवबाला और देवनन्दन का प्रेम भी सामाजिक बाधाओं से प्रभावित होता है। दोनों एक-दूसरे से प्रेम करते हैं और योग्यताओं में भी समान हैं, किंतु उनका कुल समान नहीं है। परिणामतः उनका विवाह नहीं हो पाता। देवबाला का विवाह कहीं और कर दिया जाता है और देवनन्दन आहत होकर साधु बन जाता है। ज्ञानचंद जैन ने इस उपन्यास के संदर्भ में बताया है कि उस समय ग्यारह वर्ष की बालिका को भी विवाह योग्य समझ लिया जाता था।[6]

इन प्रेमकथाओं से स्पष्ट होता है कि स्त्री की भावनात्मक इच्छाओं को कथा में स्थान मिलने लगा था, लेकिन उसके निर्णय की स्वतंत्रता अभी सीमित थी। प्रेम करने का अधिकार भावनात्मक स्तर पर स्वीकार किया गया, किंतु विवाह का अंतिम निर्णय परिवार, जाति और सामाजिक मर्यादा द्वारा नियंत्रित रहा। यही कारण है कि इन उपन्यासों की प्रेमकथाएँ व्यक्तिगत इच्छा और सामाजिक व्यवस्था के संघर्ष को सामने लाती हैं। 'सुंदर सरोजनी' में प्रेम कथा का आधार स्वप्न है। सुंदर स्वप्न में दिखाई देने वाली स्त्री से प्रेम करता है और उसकी तलाश में निकल पड़ता है। दूसरी ओर सरोजनी भी स्वप्न में सुंदर नाम के व्यक्ति को देखकर उसे अपना पति मान लेती है। इस प्रकार यहाँ प्रेम यथार्थ से अधिक कल्पना और रोमानी भावभूमि पर निर्मित है।[7]

आरंभिक हिंदी उपन्यासों का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि उनमें स्त्री की समस्याओं को सामाजिक कुप्रथाओं से जोड़कर देखा गया है। बाल-विवाह, दहेज, अनमेल विवाह, जातिगत भेदभाव, विधवा जीवन, देवदासी प्रथा और वेश्यावृत्ति जैसी समस्याएँ स्त्री के जीवन को प्रभावित करती दिखाई देती हैं। इस दृष्टि से उपन्यासकारों की दृष्टि केवल आदर्श स्त्री के निर्माण तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वे उन परिस्थितियों को भी कथा में लाते हैं जिनके कारण स्त्री का जीवन कठिन और असुरक्षित बनता है। 'स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी' में देवदासी प्रथा को केंद्र में रखकर स्त्री-जीवन की त्रासदी को सामने लाया गया है। कुसुम के पिता पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से अपनी पुत्री को देवदासी के रूप में मंदिर में दान कर देते हैं। बाद में उसे वेश्यावृत्ति के जीवन में पहुँचा दिया जाता है। कुसुम अपनी स्थिति से क्षुब्ध होकर कहती है: "संसार में यदि सचमुच किसी का जीना मरने से करोड़ों दर्जे बुरा है तो वह वेश्याओं का है।"[8] यह कथन उसके जीवन की पीड़ा को व्यक्त करता है। वह वेश्यावृत्ति से बाहर निकलने का प्रयास करती है और बसंत कुमार के साथ प्रेम तथा विवाह के माध्यम से सम्मानपूर्ण जीवन प्राप्त करना चाहती है। किंतु सामाजिक स्वीकृति का प्रश्न उसके सामने बना रहता है। इसी भय के कारण वह अपने पति का दूसरा विवाह अपनी बहन गुलाबदेई से करवा देती है। इस प्रकार उपन्यास स्त्री की मुक्ति की इच्छा के साथ सामाजिक संरचना की कठोरता को भी सामने रखता है। कुसुम अपने पिता से देवदासी प्रथा पर प्रश्न करती है: "जिस प्रथा से व्यभिचार और वेश्यावृत्ति की दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़वार हुई जा रही है, उस प्रथा को धर्म का अंग मानना यह कैसा विचार है।"[9] यह प्रश्न विशेष महत्त्व रखता है क्योंकि यहाँ स्त्री स्वयं उस सामाजिक व्यवस्था पर सवाल उठा रही है जिसने उसके जीवन को प्रभावित किया है। इस स्तर पर कुसुम केवल पीड़ित स्त्री नहीं रहती, बल्कि प्रश्न करने वाली स्त्री के रूप में सामने आती है। देवदासी प्रथा के बहाने उपन्यासकार धर्म, सामाजिक मान्यता और स्त्री-शोषण के बीच संबंध की ओर संकेत करता है।

'चन्द्रकला' में बाल-विवाह, बाल-विधवा, स्त्री पर होने वाले बलात्कार और प्रतिकूल परिस्थितियों में वेश्यावृत्ति की समस्या को चित्रित किया गया है। गोपाल राय के अनुसार, इसमें बाल-विवाह, स्त्री पर होने वाले बलात्कार और अन्य सामाजिक परिस्थितियों को वेश्यावृत्ति के कारणों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[10] इस प्रकार स्त्री के पतन को केवल व्यक्तिगत चरित्र की कमजोरी न मानकर सामाजिक परिस्थितियों से जोड़ने का प्रयास दिखाई देता है। बाल-विवाह और अनमेल विवाह की समस्या 'ठेठ हिन्दी का ठाट' में भी सामने आती है। देवबाला की कम उम्र में विवाह की चिंता की जाती है और दहेज तथा कुलगत प्रतिष्ठा के कारण उसके जीवन का निर्णय उसकी इच्छा के विपरीत किया जाता है। परिणामतः उसका प्रेम असफल होता है और वैवाहिक जीवन भी सुखद नहीं रह पाता। यहाँ विवाह संस्था में स्त्री की इच्छा की उपेक्षा उसके जीवन को किस प्रकार प्रभावित करती है, यह स्पष्ट होता है। देवबाला और देवनन्दन की समानता के बावजूद केवल कुलगत अंतर के कारण उनका संबंध अस्वीकार कर दिया जाना तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था की कठोरता को सामने लाता है।

जातिगत भेदभाव का प्रश्न 'श्यामा स्वप्न' में प्रेम के संदर्भ में सामने आता है। श्यामा और श्यामसुंदर का प्रेम सामाजिक स्वीकृति प्राप्त नहीं कर पाता। इस प्रकार प्रेम केवल व्यक्तिगत भावना नहीं रह जाता, बल्कि जाति और कुल की सामाजिक व्यवस्था से नियंत्रित होता है। स्त्री-पुरुष संबंधों पर सामाजिक प्रतिष्ठा और जातिगत मर्यादा का प्रभाव इस उपन्यास में स्पष्ट दिखाई देता है। परदा-प्रथा भी स्त्री के सामाजिक जीवन को सीमित करती थी। उस समय स्त्री और पुरुष के बीच सामान्य संवाद भी सामाजिक नियंत्रण में था। ज्ञानचंद जैन ने तत्कालीन स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि परदा इतना कठोर था कि पति भी दिन में घर की स्त्रियों तथा परिचित महिलाओं के सामने अपनी पत्नी से खुलकर बात नहीं कर सकता था।[11] इस व्यवस्था से स्त्री के सामाजिक एकांत और पारिवारिक जीवन में उसकी सीमित स्वतंत्रता का अनुमान लगाया जा सकता है। 'घराऊ घटना' में अंधविश्वास और स्त्री-जीवन का संबंध भी दिखाई

देता है। संतान-प्राप्ति की इच्छा से घर की स्त्रियाँ पूजा-पाठ, जड़ी-बूटी, साधु-संत और जादू-टोने जैसे उपायों का सहारा लेती हैं। ये प्रसंग तत्कालीन सामाजिक मानसिकता को सामने लाते हैं। यहाँ अंधविश्वास केवल धार्मिक व्यवहार नहीं है, बल्कि स्त्री की असुरक्षा, संतान संबंधी सामाजिक दबाव और अशिक्षा से भी जुड़ा हुआ है। इस प्रकार उपन्यासकार घरेलू जीवन के छोटे-छोटे प्रसंगों के माध्यम से उस समय के सामाजिक विश्वासों को कथा में स्थान देता है।

निष्कर्ष

हिंदी के आरंभिक उपन्यासों में स्त्री-जीवन का चित्रण तत्कालीन सामाजिक संरचना, पारिवारिक व्यवस्था और प्रचलित मान्यताओं से गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। इन उपन्यासों में स्त्री को केवल आदर्श गृहिणी या परिवार की मर्यादा निभाने वाली पात्र के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया, बल्कि उसके जीवन से जुड़ी शिक्षा, प्रेम, विवाह, दाम्पत्य और सामाजिक कुप्रथाओं जैसी स्थितियों को भी कथा का विषय बनाया गया। इससे स्पष्ट होता है कि आरंभिक हिंदी उपन्यास में स्त्री-प्रश्न धीरे-धीरे सामाजिक यथार्थ के व्यापक प्रश्न से जुड़ने लगा था। चमेली, यमुना, श्यामा, देवबाला, कुसुम, रमा और लक्ष्मी जैसे स्त्री-पात्र अपने-अपने परिवेश और परिस्थितियों के अनुसार स्त्री-जीवन के अलग-अलग पक्षों को सामने लाते हैं। कहीं स्त्री-शिक्षा और गृहस्थ जीवन के बीच संबंध दिखाई देता है, कहीं प्रेम और विवाह के बीच सामाजिक बंधनों की उपस्थिति सामने आती है और कहीं देवदासी प्रथा, वेश्यावृत्ति, बाल-विवाह तथा जातिगत भेदभाव जैसी व्यवस्थाएँ स्त्री के जीवन को प्रभावित करती दिखाई देती हैं। इस प्रकार स्त्री की समस्याएँ अलग-अलग न होकर परिवार, जाति, विवाह और सामाजिक प्रतिष्ठा जैसी व्यवस्थाओं से परस्पर जुड़ी हुई थीं। इन उपन्यासों की स्त्रियाँ आधुनिक अर्थों में पूर्णतः स्वतंत्र नहीं हैं और उनके जीवन पर परिवार तथा समाज का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। फिर भी वे केवल मौन और निष्क्रिय पात्र नहीं हैं। वे प्रेम करती हैं, अपनी भावनाएँ व्यक्त करती हैं, अपने जीवन की परिस्थितियों को समझती हैं और कुछ प्रसंगों में सामाजिक मान्यताओं पर प्रश्न भी उठाती हैं। विशेष रूप से चमेली और कुसुम जैसे पात्र स्त्री के भीतर विकसित होती आत्मचेतना की ओर संकेत करते हैं। इसलिए आरंभिक हिंदी उपन्यासों का स्त्री-चित्रण अपनी सीमाओं के बावजूद महत्त्वपूर्ण है। यह स्त्री को कथा के केंद्र में लाने के साथ-साथ उसके जीवन से जुड़े सामाजिक प्रश्नों को साहित्यिक विमर्श का हिस्सा बनाता है और आगे विकसित होने वाली स्त्री-चेतना के लिए एक महत्त्वपूर्ण आधारभूमि तैयार करता है।

संदर्भ-सूची

1. राय, गोपाल, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2020
2. मिश्र, भुवनेश्वर, घराऊ घटना, विद्या विहार, नई दिल्ली, संस्करण: 2017
3. मिश्र, भुवनेश्वर, बलवंत भूमिहार, विद्या विहार, नई दिल्ली, 2017
4. सिंह, ठाकुर जगमोहन, श्याम स्वप्न, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, 2015
5. गोस्वामी, किशोरीलाल, स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी, श्री सुदर्शन प्रेस, वृंदावन, द्वितीय संस्करण
6. मेहता, लज्जाराम शर्मा, स्वतंत्र रमा वा परतंत्र लक्ष्मी, मनीष पब्लिकेशन, 2022
7. उपाध्याय, अयोध्या सिंह, ठेठ हिन्दी का ठाठ, हिन्दी समय वेब साइट, सातवाँ ठाट से
8. जैन, ज्ञानचंद, प्रेमचंद-पूर्व हिन्दी उपन्यास, आर्य प्रकाशन मंडल, 1998
9. प्रकाश, डॉ. कैलाश, *प्रेमचंद-पूर्व हिन्दी उपन्यास*, हिन्दी साहित्य संसार प्रकाशन